ईरान में कभी ढह सकता है खामनेई का साम्राज्य

डॉ. ब्रम्हदीप अलूने

इतिहास गवाह है कि तानाशाहों को जनता कभी माफ़ नहीं करती. तानाशाही भय,दमन,हिंसा और जनता का उत्पीड़न करके खुद को सुरक्षित बनाने की कोशिश करती रहती. ईरान की धार्मिक तानाशाही इस लिहाज़ से और भी खतरनाक रही है,क्योंकि ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्ला अली खामनेई ने सत्ता को ईश्वर और धर्म के नाम पर वैध ठहराने की लगातार कोशिश की है. पश्चिम एशिया के इस शिया बाहुल्य देश में असहमति को धर्म विरोध बताकर कुचला जा रहा है,महिलाओं और युवाओं को मौत की सजा दी जारी है और जनता की पीड़ा को ताकत में बल पर अनसुना किया जा रहा है. इन सबके बीच इस सच्चाई से इंकार भी नहीं किया जा सकता की जब तानाशाही धर्म का चोला पहन लेती है,तो विरोध केवल राजनीतिक नहीं रहता,बल्कि नैतिक और मानवीय विद्रोह में बदल जाता है. ऐसे शासन का अंत देर से सही,लेकिन ज्यादा समय तक टलता नहीं है.

ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्ला अली खामनेई इस समय गंभीर राजनीतिक, सामाजिक और रणनीतिक संकटों से घिरे हुए हैं. यह संकट केवल बाहरी दबावों का परिणाम नहीं है,बल्कि ईरान के भीतर उभर रही असंतोष की लहर ने भी उनके नेतृत्व को चुनौती दी है. महंगाई,बेरोज़गारी,मुद्रा अवमूल्यन और प्रतिबंधों से जूझती अर्थव्यवस्था से जनता बेहाल है. वहीं युवा पीढ़ी और महिलाएं धार्मिक पाबंदियों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश से असंतुष्ट हैं, जिसे समय-समय पर उग्र विरोध प्रदर्शनों में देखा जा रहा है.

राजनीतिक स्तर पर खामनेई के सामने उत्तराधिकार का संकट भी खड़ा है. उनकी बढ़ती उम्र और स्वास्थ्य को लेकर अटकलों के बीच यह स्पष्ट नहीं है कि भविष्य में सत्ता की बागडोर किसके हाथ में होगी. यह अनिश्चितता सत्ता प्रतिष्ठान के भीतर भी खींचतान को जन्म दे रही है. बाहरी मोर्चे पर ईरान अमेरिका और इज़राइल के साथ टकराव,पश्चिमी प्रतिबंधों और मध्य-पूर्व में बढ़ते तनाव से दबाव में है. हमास,हिज़्बुल्लाह और हूती जैसे गुटों के कमजोर पड़ने से ईरान के प्रतिद्वंदी खुश है. इस समय खामनेई सत्ता में बने हुए हैं,पर उनकी पकड़ पहले की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण और अस्थिर हो चुकी है.

1979 की इस्लामिक क्रांति के बाद ईरान में सबसे बड़े विरोध प्रदर्शन हो रहे है. ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्ला अली खामनेई की सत्ता आज जिस दौर से गुजर रही है,वह उनके पूरे शासनकाल का सबसे कठिन चरण माना जा सकता है. सबसे बड़ी चुनौती ईरान के भीतर बढ़ता जन असंतोष है. जिस इस्लामिक क्रांति के वैचारिक आधार पर खामनेई की सत्ता टिकी रही,वही विचारधारा आज नई पीढ़ी को आकर्षित नहीं कर पा रही है. युवा वर्ग धार्मिक नियंत्रण,नैतिक पुलिस, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पाबंदियों और महिलाओं के अधिकारों के दमन से नाराज़ है. महसा अमीनी की मौत के बाद उभरे जन-आंदोलनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि भय के सहारे व्यवस्था को लंबे समय तक नियंत्रित करना संभव नहीं है.

आर्थिक संकट खामनेई की सत्ता के लिए दूसरी बड़ी चुनौती है. अमेरिकी और पश्चिमी प्रतिबंधों ने ईरानी अर्थव्यवस्था की रीढ़ तोड़ दी है. मुद्रा का भारी अवमूल्यन, महंगाई, बेरोज़गारी और घटती क्रयशक्ति ने आम जनता के धैर्य को समाप्त कर दिया है. जब रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करना मुश्किल हो जाए,तो वैचारिक नारे जनता को संतुष्ट नहीं कर पाते. आर्थिक विफलता ने शासन की

वैधता पर सीधा प्रश्नचिह्न लगा दिया है. तीसरा अहम संकट उत्तराधिकार का है. खामनेई जीवन के अंतिम चरण में है,स्वास्थ्य ठीक नहीं है और उनके बाद कौन सर्वोच्च नेता बनेगा,यह भी स्पष्ट नहीं है. यह अनिश्चितता सत्ता प्रतिष्ठान के भीतर ही खींचतान को जन्म दे रही है. रिवोल्यूशनरी गार्ड,धार्मिक नेतृत्व और राजनीतिक धड़ों के बीच शक्ति-संतुलन बिगड़ने का खतरा बढ़ रहा है. इतिहास बताता है कि अधिनायकवादी व्यवस्थाओं में सत्ता परिवर्तन का यही दौर सबसे अस्थिर होता है. बाहरी मोर्चे पर भी खामनेई की मुश्किलें कम नहीं हैं. अंतरराष्ट्रीय अलगाव,परमाणु कार्यक्रम को

लेकर तनाव,इजराइल और अमेरिका से टकराव तथा मध्य-पूर्व में प्रॉक्सी युद्धों की बढ़ती लागत ने ईरान को रणनीतिक दबाव में डाल दिया है. ये संघर्ष शासन को ताकतवर दिखाने का साधन तो बनते हैं,लेकिन उनकी कीमत ईरानी जनता को चुकानी पड़ती है और इससे इस देश की जनता नाराज भी है.

राजनीतिक स्तर पर खामनेई की वैचारिक पकड़ कमजोर पड़ती दिख रही है. इस्लामिक क्रांति के आदर्श नई पीढ़ी को प्रेरित नहीं कर पा रहे हैं. विरोध को दबाने के लिए सुरक्षा बलों और रिवोल्यूशनरी गार्ड का सहारा लिया जा रहा है, लेकिन इससे शासन और जनता के बीच दूरी और बढ़ रही है. कुल मिलाकर, ईरान में खामनेई के खिलाफ उभरता विरोध शासन की स्थिरता के लिए एक गंभीर चेतावनी बन चुका है. ईरान के सर्वोच्च नेता अयातुल्ला अली खामनेई के लिए तुर्की,सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात आज सबसे बड़े क्षेत्रीय विरोधी माने जाते हैं. इन तीनों देशों का विरोध वैचारिक,रणनीतिक,राजनीतिक और भू-राजनीतिक स्तर पर गहरा है. सऊदी अरब खामनेई के लिए सबसे पुराना और वैचारिक प्रतिद्वंद्वी है. ईरान की शिया क्रांतिकारी विचारधारा और सऊदी अरब की सुन्नी नेतृत्व वाली वहाबी व्यवस्था के बीच वर्चस्व की लड़ाई दशकों से जारी है. यमन,इराक, सीरिया और लेबनान जैसे क्षेत्रों में दोनों देशों के प्रॉक्सी संघर्ष इस टकराव को और तीखा बनाते हैं. यूएई खुलकर ईरान विरोधी रुख अपनाता रहा है. ईरान के परमाणु कार्यक्रम, खाड़ी क्षेत्र में सैन्य गतिविधियों और होरमुज़ जलडमरूमध्य पर प्रभाव को लेकर यूएई को सुरक्षा खतरा महसूस होता है. इजराइल के साथ यूएई की नजदीकी भी खामनेई के लिए एक रणनीतिक चुनौती है. तुर्की वैचारिक रूप से अलग होते हुए भी क्षेत्रीय नेतृत्व को लेकर ईरान से प्रतिस्पर्धा करता है. सीरिया,अजरबैजान और मध्य एशिया में तुर्की और ईरान के हित टकराते हैं. तुर्की स्वयं को सुन्नी मुस्लिम दुनिया के नए नेतृत्वकर्ता के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है,जो खामनेई की महत्वाकांक्षाओं के विपरीत है. इस प्रकार तुर्की, सऊदी अरब और यूएई मिलकर ईरान और खामनेई की क्षेत्रीय शक्ति को लगातार चुनौती दे रहे हैं.

अयातुल्ला अली खामनेई की कमजोर होती सत्ता को अमेरिका और इजराइल एक बड़े रणनीतिक अवसर के रूप में देख रहे हैं. ईरान में बढ़ता आंतरिक असंतोष,आर्थिक संकट और नेतृत्व का वैचारिक क्षरण ऐसी परिस्थितियां बना रहे हैं,जिनसे खामनेई की सत्ता की नींव हिलती दिख रही है. अमेरिका और इज़राइल के लिए यह इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि खामनेई का शासन ही ईरान की आक्रामक क्षेत्रीय नीति और परमाणु कार्यक्रम का मुख्य केंद्र रहा है. अमेरिका लंबे समय से ईरान पर प्रतिबंधों,कूटनीतिक दबाव और अंतरराष्ट्रीय अलगाव की नीति अपनाता रहा है. यदि खामनेई की सत्ता कमजोर या ढहती है तो वाशिंगटन को उम्मीद है कि ईरान की नीति अधिक नरम हो सकती है और परमाणु समझौते पर नए सिरे से बातचीत का रास्ता खुलेगा. साथ ही मध्य-पूर्व में ईरान समर्थित गुटों की ताकत भी घट सकती है. खामनेई की सत्ता का ढहना अमेरिका और इजराइल के लिए क्षेत्रीय शक्ति संतुलन को अपने पक्ष में मोड़ने का बड़ा अवसर बन सकता है.

ईरान में जैसे-जैसे शासन दमन की नीति को तेज़ कर रहा है,वैसे-वैसे जनता का गुस्सा अयातुल्ला अली खामनेई के खिलाफ और अधिक भड़कता जा रहा है. विरोध प्रदर्शनों को कुचलने के लिए सुरक्षा बलों,रिवोल्यूशनरी गार्ड और कड़े कानूनों का सहारा लिया जा रहा है, लेकिन इसका असर उलटा पड़ रहा है. भय पैदा करने के बजाय दमन ने जनता के भीतर गहरे आक्रोश को जन्म दिया है.

> ईरान में अयातुल्ला अली खामनेई के प्रति बढ़ता जन-असंतोष अब केवल सड़कों तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि उसके असर सत्ता के सबसे मजबूत स्तंभ रिवोल्यूशनरी गार्ड तक पहुंचने की आशंका बढ़ती जा रही है. अब तक खामनेई की सत्ता का सबसे बड़ा आधार यही बल रहा है,लेकिन जब जनता का व्यापक गुस्सा किसी एक नेतृत्व के खिलाफ केंद्रित हो जाता है,तो सुरक्षा संस्थानों के भीतर भी मतभेद और असमंजस पैदा होना स्वाभाविक है. अमेरिका का लगातार रणनीतिक और आर्थिक दबाव ईरान की स्थिति को और कमजोर कर रहा है. कड़े प्रतिबंध, अंतरराष्ट्रीय अलगाव और क्षेत्रीय तनावों ने शासन की आर्थिक व कूटनीतिक गुंजाइश सीमित कर दी है. इससे न केवल जनता त्रस्त है, बल्कि सत्ता प्रतिष्ठान के भीतर भी यह सवाल उठने लगे हैं कि टकराव की यह नीति कितने समय तक टिकाऊ है. वर्तमान हालात यह संकेत दे रहे हैं कि ईरान एक नाज़ुक मोड़ पर खड़ा है. जब जन-असंतोष बढ़े, सुरक्षा ढांचे में संभावित फूट की आशंका हो और बाहरी दबाव लगातार बना रहे तो सत्ता का किला मजबूत दिखते हुए भी भीतर से खोखला हो जाता है. जाहिर है खामनेई की सत्ता का किला तेजी से दरक रहा है और वह किसी भी समय ढह सकता है.

व्यंग्य

गुड़, तिल, लड्डू और सियासत

रवि उपाध्याय
लेखक व्यंगकार और राजनीतिक समीक्षक हैं)

मकर संक्रांति में जितना महत्वपूर्ण सम्बन्ध गुड़ - तिल्ली और लड्डू का है. सियासत में भी इन तीनों चीजों का वैसा ही महत्वपूर्ण संबंध है. जिस तरह पानी के बिना सब सून है उसी तरह सियासत में बिन गुड़ सब सूना सूना है. जहां गुड़ होता है वहीं तो मक्खियां और चींटियां होतीं है . उसी तरह सियासत वह जादू है जहां तिल का ताड़ बनाए जाने का काम ही सफलता की गारंटी है. सियासत में लड्डू रूपी कुर्सी ही अंतिम लक्ष्य है. जिस को यह नहीं मिलता वह इसे पाने के लिए इस डाल से उस डाल पर उछल- कूद करता रहता है. ऐसा करने से सियासत और मीडिया में प्रासंगिकता बनी रहती है. लगता है कि नेताजी बाइब्रेंट हैं.

सियासत में सफलता का मूल मंत्र है कि इसमें इक्का,बादशाह या गुलाम ही क्यों न हो, उसकी बोली कोयल जैसी मीठी हो. फिर चाहे वह इक्का, बादशाह और गुलाम ही क्यों न हो. उसकी जुबान से चाशनी टपा टप टपकती होनी चाहिए. नीति शास्त्र में कहा गया है कि इंसान भले ही गुड़ न दे परन्तु गुड़ जैसी बात तो कम से कम करे बता दें कि यह बात सियासत में सक्रिय उन सभी लोगों पर लागू होती है . फिर चाहे वे किसी भी रंग की टोपी ही क्यों न लगाते हों. इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता है. कामयाबी का यह फॉर्मूला केवल सियासत में ही लागू नहीं होती. बल्कि यह जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू होता है. सही कहें तो जीवन में सफलता का मूल मंत्र ही मीठी मीठी बातें होतीं है . इन्हीं मीठी बातों से किसी को भी बेवकूफ बना कर अपना उल्लू सीधा किया जाता है. चापलूसी इसी की सहोदर है.

सियासत में टोपी के रंग से कोई अंतर नहीं पड़ता है. यह तो आनी जानी है, पर गुड़ ही सब की असली कहानी है . सियासती दल मतदाताओं को यही गुड़ अपने चुनावी घोषणा पत्र में लपेट कर बांटने का काम करते हैं. जिसमें जमीं पर चांद तारे लाने के वायदे किए जाते हैं . बाद में अगला घोषणा पत्र आने तक बेचारे वोटर को दिन में तारे नज़र आने लगते हैं. सत्ता में आने पर सियासी नेता गुड़ तो खुद उदरस्थ कर लेता है और बेचारे वोटर के नसीब में घोषणा पत्र को चाटने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं रहता है.

रास्ता शब्द की जगह चारा शब्द का उपयोग किया जा सकता था . पर इस शब्द का उपयोग इसलिए नहीं किया गया है क्योंकि यह वस्तु भी नेताओं से बाक़ी नहीं बची है, वे इसको भी चर गए और जब चारा खत्म हो गया तो, जमीन तक भी नेता जी खा गए . इस प्राणी से न तो ज़मीन ही बची है और न ही खुद का उसका अपना ज़मीर ही बचा है. उसे भी बड़े प्रेम से जीम गए. अब जमीन से जुड़े नेता परिवार का यही मामला दिल्ली में मी लॉर्ड के सामने है.

संक्रांति में जिस तरह लड्डू के लिए गुड़ के बाद दूसरा महत्वपूर्ण इंग्रीडिएंट तिल है, उसी तरह सियासत में तिल की बड़ी भूमिका है. नेता के तिल को ताड़ बना कर उसके शिखर पर जा कर बैठ जाता है. तिल के ताड़ बनाने के कई उदाहरण हैं. तिल का ताड़ बनाने में नेताओं से बड़ा कोई चैम्पियन नहीं होता. दिल्ली में एक टोपी वाले भाई आए थे. उन्होंने सभी को चोर और भ्रष्टाचारी बताया. पर खुद ही कमाल कर गए. वहां से बे ज़ार होने के बाद उन्होंने पंजाब में पॉवर के वायर पर अपना कटिया डाल लिया . अब वहां भी उनकी पांचों उंगलियां घी में और सिर कढ़ाई में हैं. सुना तो यह भी है कि वहां भी वे दिल्ली की तरह शीशमहल तामीर करवा रहे हैं. जबकि वीर जी सत्ता के सुरूर में हैं तो मफलर वाले बाबू सत्ता का असली मज़ा भोग रहे हैं. कुछ लोग ऊपर वाले से अपनी किस्मत में राज भोग लिखवा कर लाते हैं. वे आज भी वही योग भोग रहे हैं.

राजनीति में नेता और लड्डू में एक और बड़ी समानता है दोनों चलायमान और गतिशील होते हैं. दोनों जड़ नहीं है. दोनों में लुढ़कने की शक्ति और हसरत मौजूद होती है. जरा सी ढलान मिली के इधर से उधर होने में देर नहीं लगाता है ये गोल गोल लड्डू. इसका कोई पक्ष नहीं होता है. यह हर पक्ष में समा जाता है. यह रमता जोगी और बहता पानी जैसा है . यह लड्डू हमारी दुनिया का प्रतिरूप है. जिस तरह आकार में गोल यह दुनिया अपनी धुरी पर घूमती रहती है उसी तरह सियासत भी इसी सत्ता के लड्डू के आसपास घूमती रहती है. सत्ता के लड्डू पर यह फिल्मी गीत मौजू बैठता है कि हम है राही प्यार के हम से कुछ न बोलिए जो भी प्यार से मिला हम उसी के हो लिए. यही जीवित लोकतंत्र है इसे ही बाइब्रेंट पॉलिटिक्स है.

कहते हैं कि जो व्यक्ति एक बार सियासत का यह लड्डू खा लेता है वह उसका स्वाद कभी नहीं भूलता है. वह मरते दम तक सत्ता का यह लड्डू ढूंढता रहता है. लड्डू ही वह तारा है जिसके चारों तरफ राजनीतिक दल ग्रहों के रूप में चक्कर लगाते रहते हैं. सभी राजनैतिक दलों का एक मात्र लक्ष्य सत्ता का लड्डू पाना है. नेता जड़ नहीं बल्कि सजीव प्राणी है और गति उसका स्वभाव है यदि वह एक जगह से दूसरी जगह चला जाता है तो यह उसकी जीवंतता का द्योतक है.

श्याम यादव

कांग्रेस की राजनीति में राज्यसभा– सुविधा, सम्मान और चुप्पी

कांग्रेस की राजनीति में राज्यसभा अब प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं रही, वह प्रबंधन का साधन बन चुकी है. यह वह सदन है, जहां नेता जनता के फैसले से नहीं, पार्टी की सुविधा से पहुंचते हैं. ऐसे समय में जब दिग्विजय सिंह जैसे वरिष्ठ नेता राज्यसभा से इनकार करते हैं, तो वह व्यक्तिगत असहमति से ज़्यादा कांग्रेस की मौजूदा राजनीतिक कार्यशैली पर टिप्पणी बन जाती है.

कांग्रेस आज जिन संकटों से गुजर रही है, वे केवल चुनावी नहीं हैं. संकट नेतृत्व का है, भूमिका का है और सबसे ज़्यादा भरोसे का है. पार्टी के भीतर निर्णय की प्रक्रिया लगातार सिमटती जा रही है. जिन नेताओं को खुली राजनीतिक जिम्मेदारी देना जोखिम भरा लगता है, उन्हें राज्यसभा के रास्ते सम्मानित कर देना एक आसान समाधान बन गया है. यह समाधान पार्टी के लिए सुविधाजनक हो सकता है, लेकिन राजनीति के लिए खोखला. राज्यसभा का इस्तेमाल अब वैचारिक हस्तक्षेप के मंच की तरह नहीं, बल्कि शांतिपूर्ण पार्किंग की तरह किया जाने लगा है. यहां नेता सक्रिय राजनीति से दूर रहते हुए भी राजनीतिक उपस्थिति बनाए रखते हैं. न उन्हें संगठन में जवाबदेही निभानी होती है, न जनता के सामने खड़ा होना पड़ता है. कांग्रेस की यह प्रवृत्ति बताती है कि पार्टी संघर्ष से ज़्यादा संतुलन साधने में विश्वास करने लगी है. दिग्विजय सिंह का इनकार इसी संतुलन को बिगाड़ता है. यह कांग्रेस के भीतर उस धारणा को चुनौती देता है कि हर वरिष्ठ नेता के लिए अंतिम ठिकाना राज्यसभा ही है.

यह सवाल उठता है कि क्या पार्टी अब यह मान चुकी है कि अनुभव का इस्तेमाल मैदान में नहीं, केवल संसद की औपचारिकता में किया जाएगा? कांग्रेस की राजनीति लंबे समय से दो धाराओं में बंटी दिखती है—एक वह, जो सत्ता के करीब रहकर राजनीति को सुरक्षित रखना चाहती है; दूसरी वह, जो टकराव, असहमति और जोखिम को राजनीति का अनिवार्य हिस्सा मानती है. राज्यसभा पहली धारा का औजार बन चुकी है. दिग्विजय सिंह जैसे नेता, जो इससे दूरी बनाते हैं, दूसरी धारा की याद दिलाते हैं, भले ही वह धारा अब कमजोर क्यों न हो.

यह भी उल्लेखनीय है कि कांग्रेस में राज्यसभा का चयन अक्सर राजनीतिक संदेश देने के बजाय राजनीतिक असुविधा छुपाने का तरीका बन जाता है. किसे आगे लाना है, किसे सीमित करना है, और किसे सम्मान के साथ किनारे करना है-इन सबका समाधान नामांकन में खोज लिया जाता है. इससे पार्टी की वैचारिक बहस और संगठनात्मक ऊर्जा दोनों ही प्रभावित होती हैं. कांग्रेस आज जिस दौर में है, वहां उसे नेताओं की चुप्पी से ज़्यादा उनके सवालों की जरूरत है. लेकिन राज्यसभा की राजनीति सवालों को संसद के शिष्टाचार में बांध देती है. वहां असहमति भी मर्यादित होती है और आलोचना भी नियंत्रित. यही कारण है कि यह मंच सत्ता के लिए सुरक्षित है, लेकिन बदलाव के लिए नहीं. दिग्विजय सिंह का फैसला इसलिए भी असहज करता है क्योंकि वह कांग्रेस को उसकी आदतों से बाहर निकलने को मजबूर करता है. यह बताता है कि हर नेता इस व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है. राजनीति में कभी-कभी इनकार वह भूमिका निभा देता है, जो कई भाषण नहीं कर पाते.

अंततः यह प्रश्न दिग्विजय सिंह का नहीं, कांग्रेस का है. क्या पार्टी राज्यसभा को वैचारिक लड़ाई का मंच बनाएगी या उसे सुविधाजनक चुप्पी का सदन बनाए रखेगी? क्या कांग्रेस जोखिम उठाने वाली राजनीति को फिर से अपनाएगी, या प्रबंधकीय राजनीति में ही सिमट जाएगी? इन सवालों के जवाब फिलहाल स्पष्ट नहीं हैं. लेकिन इतना तय है कि जब कोई नेता सत्ता की आसान राह से मुड़ता है, तो वह पार्टी को अपने रास्ते पर दोबारा सोचने के लिए मजबूर करता है. और आज की कांग्रेस के लिए यही सबसे जरूरी हस्तक्षेप है.

डॉ हेडगेवार की साइकोलॉजी को संघ प्रमुख ने बताया शोध का विषय

कृष्णमोहन झा

विगत दिनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के 100 वर्षों के गौरवशाली ऐतिहासिक सफर की सजीव झांकी से लोगों का साक्षात्कार कराने के उद्देश्य से एक फिल्म के निर्माण की घोषणा की गई. शतक नाम से बनने जा रही इस रोमांचक फिल्म के दो सुमधुर गीतों भारत मां के बच्चे और भगवा है मेरी पहचान का लोकार्पण सरसंघचालक मोहन भागवत द्वारा किया गया.

इस फिल्म के निर्माता वीर कपूर और सह-निर्माता आशीष तिवारी हैं जबकि फिल्म का निर्देशन आशीष मल्ल कर रहे हैं. शतक फिल्म के इन सुमधुर गीतों को सुप्रसिद्ध गायक सुखविंदर सिंह ने आवाज दी है. संघ के शताब्दी वर्ष में प्रदर्शित होने जा रही इस दर्शनीय फिल्म में संघ के स्थापना काल से लेकर विगत 100 वर्षों की संघ की गौरवशाली यात्रा के महत्व पूर्ण पड़ावों और राष्ट्र व समाज निर्माण में संघ के महत्वपूर्ण योगदान को चित्रित किया जा रहा है. शतक फिल्म के गरिमामय गीत लोकार्पण समारोह में फिल्म के निर्माता वीर कपूर, निर्देशक आशीष

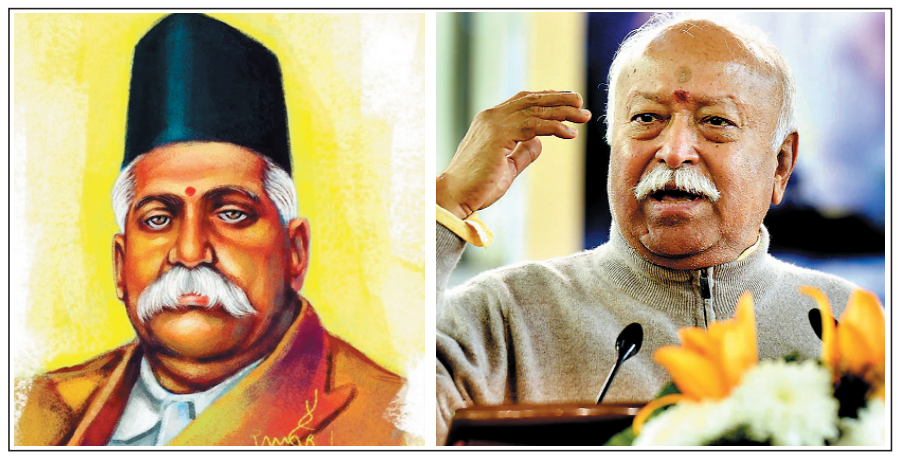

मल्ल, गायक सुखविंदर सिंह के साथ ही संग की राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य सुरेश भैयाजी जोशी ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई .

इस अवसर पर संघ प्रमुख ने कहा कि ज्यों ज्यों संघ नये रूप में विकसित होता है तो लोगों को लगता है कि संघ बदल रहा है लेकिन संघ बदल नहीं रहा है बल्कि संघ नये रूप में प्रकट हो रहा है. जैसे एक बीज से पहले अंकुर निकलता है फिर वह बड़ा होकर फल फूल से लदा वृक्ष बन जाता है . यद्यपि अंकुर और वृक्ष दोनों अलग रूप हैं परन्तु यथार्थ में दोनों ही बीज के समानार्थी हैं. यही बात संघ के बारे में भी कहीं जा सकती है. संघ विकसित होने के साथ बदल नहीं रहा है बल्कि नये रूप में सामने आ रहा है.

संघ प्रमुख ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उसके संस्थापक डॉ हेडगेवार को समानार्थी बताते हुए कहा कि डा हेडगेवार जन्मजात देशभक्त थे. उनके मन में बचपन से ही यह बात घर कर चुकी थी कि हम परतंत्र हैं और हमें स्वतंत्र होना है . उन्होंने स्कूली शिक्षा के दौरान चौथी कक्षा में महारानी विक्टोरिया के स्वागत समारोह में दी गई मिठाई फेंक दी थी. संघ प्रमुख ने डा हेडगेवार के प्रेरक व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जब डा साहब मात्र 11 वर्ष के थे तब एक घंटे के अंतराल से ही उनके माता-पिता , दोनों का प्लेग की बीमारी से निधन हो गया था. इतनी कम उम्र में सिर से माता पिता का साया उठ जाना किसी भी बालक को उदासीन और विचलित कर सकता है परन्तु डा हेडगेवार ने इस महान आघात का अपने मन और स्वभाव पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ने दिया बल्कि अपना सर्वस्व देश के लिए समर्पित करने का मन बना लिया.

संघ प्रमुख ने कहा कि डा हेडगेवार मजबूत और स्वस्थ मन के धनी थे उनके अंदर बड़े से बड़ा आघात सहन करने की क्षमता और साहस मौजूद था. उनका विरोध करने वाले लोगों में उनके मित्र भी शामिल थे परन्तु उनके पास सब प्रकार के लोगों को जोड़ने का स्वस्थ मन था. यही कारण था कि इतनी कम उम्र में भी माता पिता के निधन का आघात उनके मन में विकृति और उदासीनता नहीं ला सका . संघ प्रमुख मोहन भागवत ने अपनी इस बात को विशेष रूप से रेखांकित किया कि डा हेडगेवार की इस साइकोलॉजी को अध्ययन और शोध का विषय बनाया जा सकता है.

(लेखक राजनैतिक विश्लेषक है)